याद – मयंक शेखर

कभी किसी को नहीं बख्शा

जब उनके उपन्यास 'जमनिया का बाबा' का अमेरिका में अंग्रेजी में अनुवाद हुआ और मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में भारतीय साहित्य पढ़ाने वाले जैक वेहिकिल्स उनसे मिलने आए तो अपनी चौकी पर मुड़े-तुड़े बिस्तर में पड़े-पड़े उन्हें जरा भी हीनभावना का अनुभव नहीं हुआ।

हिंदी में 'नागार्जुन' और मातृभाषा में 'यात्री' नाम से सर्वाधिक प्रसिद्धि पाने वाले पं. वैद्यनाथ मिश्र साहित्य जगत के एकमात्र हस्ताक्षर हैं जिनका न केवल संस्कृत, बंगला में भी हिंदी के समान अधिकार था, बल्कि लोकप्रियता की दौड़ में उन्होंने अपने समय के सभी रचनाकारों को पीछे छोड़ दिया। उम्र ढलने से पहले ही नागार्जुन 'बाबा' के नाम से मशहूर हो गए थे और चूंकि वे हिंदी साहित्य के एकमात्र औघड़ थे, इसलिए बाबा कहने से ही लोग समझ जाते थे कि किस साहित्कार की बात हो रही है। भारत की किसी भी भाषा में बाबा जैसी हस्ती की दूसरी मिसाल नहीं मिलती, जिनकी रचनाशीलता में एक ही साथ कालिदास, तुलसीदास कबीरदास की शैली की स्पष्ट झलक मिलती हो। बाबा के जीवन जीने के स्टाइल और लिखने के अंदाज में सबसे ज्यादा कबीर का प्रभाव मिलता है, इसलिए इन्हें आधुनिक कबीर कहा ही जाता है।

सुविधासंपन्न जिंदगी से उन्हें नफरत थी। वे उन्हीं गरीब, उपेक्षित आम लोगों के बीच उठना-बैठना पसंद करते थे जिन्हें उन्होंने अपनी रचनाओं का पात्र बनाया। दिल्ली जैसे महानगर की चकाचौंध बाबा को कभी आकर्षित नहीं कर पाई। उनका बुढ़ापा भी यों तो युवावस्था की तरह ही घूमते-फिरते गुजरा, मगर हर जगह से घूम-घामकर वे फिर ज्यादा समय दिल्ली के स्लम इलाके में गुजारते थे। जिस ऐश के लिए राजनीति में जाने का इन दिनों फैशन है, उसमें शामिल किसी भी व्यक्ति को बाबा ने बख्शा नहीं। विचारों से थोड़ी कम्युनिस्ट सोच बाबा की जरूर थी मगर वे कम्युनिस्ट नहीं बने। बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद के उस बिंदु को बाबा भलीभांति समझते थे जहां ईश्वर के अस्तित्व को नकारा गया है, लेकिन उन्होंने नास्तिकता को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। हां, पूजापाठ के नाम पर कायम हिंदू समाज की कुरीतियों को दर्शाने वाले कथानक उनकी कृतियों के मुख्य विषय रहे।

बाबा नागार्जुन
पांचवीं पुण्यतिथि (5 नवंबर)

कम्युनिस्ट नेता और वामपंथी रुझान वाले साहित्यकारों ने जब बाबा को कम्युनिस्ट के रूप में प्रचारित कर दिया तो उन्होंने ऐसे लोगों को जमकर लताड़ा तथा 'प्रगतिशील' शब्द पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। बाबा कहते थे कि यहां के कम्युनिस्टों की सोवियत सोच से उनकी भारतीयता विलुप्त हो गई है और अपनी कविता 'अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन' में उन्हें भी लपेटा – 'वोल्गा तट पर करें रात दिन गंगा-पुत्र विहार, वामपंथ के पथिक तुम्हारी सूरत रहे निहार।' उनका मानना था कि जनता के बीच रहकर जनसाधारण के हित में काम करने के लिए किसी वाद को अपनाने की जरूरत नहीं है। शोषण, उत्पीड़न और राजनीतिक अव्यवस्था के खिलाफ अपनी लेखनी से आजीवन खौलता लहू उगलने वाले बाबा खून की होली में विश्वास रखने वाले नक्सली विचारों के हिमायती नहीं थे। दरअसल उन्होंने निम्न और मध्य आयवर्गीय जिंदगी को काफी करीब से महसूसा तथा उसे चित्रित करते समय वे अच्छी तरह समझ रहे थे कि समाज के इस वर्ग का जीवनस्तर किसी भी व्यवस्था में बदलाव आने से सुधर नहीं सकता। भूख और अभाव को बाबा ने बचपन से देखा तो मृत्युपर्यंत उनके जीवन के अंग बने रहे। बाबा नागार्जुन का साहित्य संसार बताता है कि एक ओर जहां उन्होंने अपने समय की तमाम समसामयिक घटनाओं पर तीखी, खुरदरी टिप्पणियां कीं और इतनी की कि उनकी छवि ऐसे ही साहित्कार के रूप में बन गई, वहीं दूसरी ओर तुलसी व कालिदास की शैली में विशुद्ध साहित्यिक पद्यों की रचना करके बाबा ने अपनी विद्वता की धाक जमाई। बाबा के व्यंग्य का खुरदरापन उनके हर काम से झलकता था। एक बार का किस्सा मुझे याद आता है। बात 1992 की है जब बिहार सरकार ने बाबा को राजेन्द्र शिखर सम्मान से सम्मानित किया।

तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव ने सम्मान प्रदान करने के साथ-साथ बाबा को च्यवनप्राश का एक डिब्बा यह कहते हुए भेंट किया– 'मैं अपनी मां के लिए ला दिया करता था। रौआ के हम मरे ना देब, रौआ के जियाबे के बा (आपको हम मरने नहीं देंगे, आपको जिलाना है)' पुस्कार समारोह की समाप्ति के बाद पर्यटन विभाग के होटल के कमरे में च्यवनप्राश ब्रेड पर लगाकर खाते हुए बाबा ने कहा– 'च्यवनप्राश तो मैंने पहले भी खाया है, मगर इसका तो मजा ही कुछ और है, सरकारी है न, इसीलिए। गजब का स्वाद है प्यारे। अभिनय में शत्रुघ्न सिन्हा का नाना है लालू, देखना, इसकी नटलीला इसे दुबारा मुख्यमंत्री बना देगी।' बाबा उन गिने चुने साहित्यकारों में से थे जिनकी किताबें लोग व्यक्तिगत रूप से खरीदकर पढ़ते थे और पुस्तकालयों के भरोसे नहीं रहते थे। फणीश्वर नाथ रेणु और राजकमल चौधरी नागार्जुन पीढ़ी की अगली कड़ी थे जिन्हें बाबा काफी पसंद भी करते थे। जब उनके उपन्यास 'जमनिया का बाबा' का अमेरिका में अंग्रेजी में अनुवाद हुआ और मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में भारतीय साहित्य पढ़ाने वाले जैक वेहिकिल्स उनसे मिलने आए तो अपनी चौकी पर मुड़े-तुड़े बिस्तर में पड़े-पड़े उन्हें जरा भी हीनभावना का अनुभव नहीं हुआ। जापानी लेखिका कीयो कुरु तो हमेशा आती थीं और कई-कई दिन उनके पास रहती थीं। सतत यात्रा पर सन्नद्ध रहना और एक छोटा ट्रांजिस्टर कान से लगाए रखना बाबा की हॉबी थी। ट्रांजिस्टर पर बाबा विभिन्न प्रदेशों के लोक गीत सुना करते थे। किसी व्यवस्था के अनुकूल समझौता करना बाबा ने कभी सीखा ही नहीं, इसलिए लेखनजीवी रहकर जिंदगीभर प्रकाशकों के शोषण का शिकार बने रहे, शोषण के खिलाफ लिखते रहे, मगर अपने उसूल नहीं छोड़े। बाबा को पत्नी (अपराजिता देवी) भी वैसी ही जीवट वाली मिली थी। वे सही मायने में अपराजिता थीं। जब बाबा किशोर उम्र में शादी के बाद घर से भागकर श्रीलंका चले गए थे तो गांव के लोगों को उनके लौटने की उम्मीद नहीं थी मगर 'काकी' के रूप में मशहूर अपराजिता जी को पक्का भरोसा था कि उनके पति अवश्य एक दिन लौटेंगे और वे बाबा के जीवनकाल में ही स्वर्ग सिधार गईं। प्रेमचंद के अनुसार पति के जीवनकाल में मृत्यु भाग्यशालिनी पत्नियों को प्राप्त होती है। प्रेमचंद ने भी अपने जीवन का काफी समय विधुर के रूप में गुजारा।

'दैनिक भास्कर' 3.11.2002